शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 मार्च 2019
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

मृगावती के स्त्री पात्रों का विवेचनात्मक अध्ययन

छाया चौबे (शोधार्थी)
जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय
दिल्ली, भारत

शोध संक्षेप

हिंदी साहित्य के मध्यकाल की एक प्रमुख परम्परा प्रेमाख्यानकों की रही है जिसे 'प्रेमाख्यानक काव्य' अथवा 'सूफी प्रेमकाव्य' की संज्ञा दी गई है। इन मुसलमान कवियों ने प्रेम की ऐसी निराली दासतां रची, जिसकी अनुगूँज में लोक और परलोक दोनों समाहित हैं। ये कहानियाँ आज रूढ़ि के रूप में प्रेम की पराकाष्ठा की सूचक है। प्रस्तुत शोध पत्र में मृगावती के स्त्री पात्रों का विवेचनात्मक अध्ययन किया गया है।

भूमिका

आचार्य शुक्ल ने चंदायन के प्राप्य न होने से 'मृगावती' से ही अपने इतिहास में इस परम्परा का प्रारम्भ माना। उन्होंने लिखा, 'मृगावती' नाम की एक कहानी चौपाई दोहे के क्रम से सन् 909 हिजरी (संवत् 1558) में लिखी जिसमें चन्द्रनगर के राजा गणपतिदेव के राजकुमार और कंचनपुर के राजा रूपमुरारी की कन्या मृगावती की प्रेमकथा का वर्णन है।..इन प्रेमगाथाओं के रूप में उस प्रेमतत्व का वर्णन किया है जो ईश्वर को मिलनेवाला है तथा जिसका आभास लौकिक प्रेम के रूप में मिलता है।'[1]

सूफी काव्यों की परम्परानुसार कथानायिका 'मृगावती' को कुतुबन ने परमात्मा का स्वरूप माना है। सूफी परमात्मा को अलौकिक सौंदर्य से पूर्ण मानते हैं। यहाँ 'मृगावती' भी अपने अलौकिक सौंदर्य के कारण साधक को प्रथम दृष्ट्या अपनी ओर आकृष्ट करती है। परमात्मा रूपी मृगी (मृगावती) का नूर भी जगत के कण-कण में प्रतिबिम्बित होता है जो अपने सौंदर्य से सृष्टि को प्रकाशित कर रही है।

मृगी

सर्वप्रथम मृगी सात रंगों में प्रतिभासित होती है और साधक (राजकुँवर) सात योजन तक यात्रा के पश्चात् सरोवर में प्रवष्टि होती मृगी को देख सरोवर में घुस गया किंतु उसे मृगी न मिली। यहाँ कवि का यह भी संकेत हो सकता है कि प्रेमरूपी परमात्मा की प्राप्ति इस सरोवर की गहराई से भी गहरी है जिसके लिए साधक को और अधिक तप की आवश्यकता है जिससे साधक उस योग्य बन सके।

जल में सूर्य के पड़ने वाले प्रतिबिम्ब से सूर्य को देखा जा सकता है उसी प्रकार असत् के दर्पण में पड़ने वाले परमात्मा के प्रतिबिम्ब के द्वारा परमात्माता को देखा जा सकता है। कुतुबन यह स्पष्ट करते हैं कि सूर्य परमात्मा है और जल के समान असत् का दर्पण और प्रतिबिम्ब के समान दृश्यमान जगत है।[2]

राजा द्वारा उस स्थान पर मन्दिर का निर्माण कराया जाता है जहाँ राजकुमार ने मृगावती के प्रथम दर्शन किये और अब वह साधना करने को व्याकुल है। मृगी के चित्र की आराधना यह सिद्ध करती है कि साधक जीवात्मा से मिलने को व्याकुल है और उसके विरह में अश्रु विलाप कर रहा है -

(रो) वै बहुत 'सरिल' सब लोहू। जो रे देख तेहि उठै मरोहू।

(ज) ब लगि चाह न ओहि के पाउ। मरौं इहाँ पै चित न डोलाउं।।''[3]

साधक (राजकुँवर) भाद्र, माघ तथा जेष्ठ के तापों को विरह में व्यतीत कर देता है, किंतु अनेक कष्टों के बाद भी मंदिर में मृगावती की प्रतीक्षा यथावत बनी रहती है। और एक वर्ष की दीर्घ अवधि के बाद मृगावती का आगमन 6 अप्सराओं के साथ होता है। उसके आने पर सब कुछ अलौकिक हो जाता है -

''जानु अकास चांद परगसा। वैसव नखत जानहुं दस दिसा।।'[4]

अब राजकुमार को उस दिव्यप्रेम की प्रेमानुभूति होती है, जिसमें प्रेम में उसे अपनी साधना का फल प्रतीत होता है वह पुनः मूर्च्छित हो जाता है। मूर्च्छित होना कथानक रूढ़ि के साथ साधक के प्रेम की अयोग्यता का सूचक है जो उस परमात्मीय प्रकाश को देखने में असमर्थ होता हुआ मूर्च्छित हो जाता है। मृगावती का आना और पुनः उड़ जाना आदि को द्विवेदीजी ने विदेशी बताया है- ''पुरुष का एकान्तिक प्रेम और प्रिया को प्राप्त करने के लिए कठिन साधना तथा प्रिया को धोखा देकर उड़ जाना और दूसरे देश में राज्य करना ये दोनों कथानक रूढ़ियाँ देश के लिए नई हैं।''[5]

मृगावती का नख-शिख वर्णन राजकुँवर द्वारा धाय से होता है जो मांग से शुरू होकर पैर की झंकार पर समाप्त होता है। मृगावती स्वयं भी राजकुँवर पर अनुरक्त हो जाती है क्योंकि राजकुँवर की साधना का आकर्षण ही उसे पुनः निर्जला एकादशी पर आने को बाध्य करता है। मृगावती का अपनी सखियों के साथ सरोवर में आना, और पदमावत में पदमावती का भी सखि-सरोवर स्नान इन बिम्बों में सूफी कवियों ने अपनी कथानायिका की अलौकिकता के साथ समाज का भी दर्पण प्रस्तुत किया है। जायसी ने भी सखियों के वार्तालाप में 'मानसरोदक खण्ड' में 'स्त्री-जीवन' का जीवन्त चित्र प्रस्तुत किया है।

इस कथानक में चंदा की भाँति या पदमिनी या अन्य सूफी नायिकाओं की ही तरह मृगावती भी राजकुमार के पवित्र प्रेमी हृदय पर अनुरक्त हो गयी। मृगावती का 'जी' राजकुँवर पर जीवन्त हो गया है, किंतु इन अवसरों पर उसे छिपाना अत्यंत गूढ़ हो जाता है जैसे मानस में भी भगवान राम लक्ष्मण से सीय के प्रति अनुराग को छिपा नहीं पाते। यहाँ भी लोकपक्ष हावी हो गया है और मृगावती का अपने प्रेम को सखियों से छिपाना सहज मनोभाव है जिसे कुतुबन इस प्रकार वर्णित किया है -

''एह 'पै' एक न बकतइ बाता। जो गिर राजकुँवर 'सेउ' राता।।''[6]

x x x

''जिउ के बात न आपनि कहा जनु गुंग खाई मिठाई रहा।[7]

मृगावती जब सरोवर के पास आती है तो -

''सासि रे नखत लै 'तारइ' सरवर खेलइ 'आइ'।।''[8]

मृगावती का चीर राजकुँवर द्वारा हरण कर लिया जाता है जो घटना श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों के वस्त्र चुरा ले जाने का प्रसंग याद दिलाती है। मृगावती से अपनी व्यथाकथा कहने के बाद राजकुँवर पुनः चीर न लौटाने का हठ करता है तो मृगावती कहती है -

''मिरगावतिइ कहा सुनु राया। तुम्हं लगि मिरिग 'धरी हम' छाया।
दोसरें तोहि लागि हौं आई। सखि सहेलि हौं साथ लगाई।
पुनि मिस धरेउं एकादसि केरा। आइउ बेगि न आइउ बेरा ।।
केहि कारन कहं चीर 'लुकाएहु'। सखी सहेलिन्हु साथ छड़ाएहु ।।

चांर हमार देहु तुम्ह आनी। जह आएसु तह कौन सयानी।[9]

और तब राजकुँवर चीर के साथ अपना तन, मन और जीव सब अर्पित करता है -

"तन मन जीउ हमारेउ अरपउं, देउं चरि सै सात।।"[10]

कुतुबन ने अपनी कथा में आध्यात्मिकता पर लोककथा हावी नहीं होने दी है। उनके संकेत लोकपक्ष और आध्यात्म को स्पष्ट कर देते हैं। यथा मृगावती का पुनः राजकुँवर को धोखा देकर उड़ जाना और साधक का जोगी बनकर निकलना; परमात्मा प्राप्ति की बाधाओं का उद्घाटन करना है। यदि मृगावती पलायन न करती तो राजकुँवर योगी कैसे बनता और यदि योगी न बनता तो कुतुबन के सिद्धांत का उद्घाटन कैसे होता। सूफीमत के सिद्धांतों के प्रसार में रचनाकार ने मिलन के बाद पुनः विरह की स्थिति को भयावहता का वर्णन किया है [11] जो इन काव्यों का प्रसिद्ध रूढ़ि है।

कुतुबन यह बताना चाहते हैं कि भले ही यह प्रेम अत्यंत कठिन है और प्रेमी के लिए दुःखदायी है। फिर भी इस प्रेम के खेल को खेलता है वह इस लोक तथा परलोक दोनों में तर जाता है, क्योंकि इसी दुःख के भीतर प्रेम का मधु स्रोत छिपा है। इसका रसास्वादन वही कर सकता है जो दुःख और मरण पर विजय प्राप्त करता है।[12]

परमात्मा की कृपा के अनन्तर ही जीवात्मा को परमात्मा की प्राप्ति होगी। मृगावती उड़ कर जाते समय अपने मिलन का रास्ता बता जाती है जहाँ पर साधक (राजकुँवर) को और अधिक तपन हो जो हृदय की महान साधना का उच्चतम बिन्दु होगा।

मृगावती के पिता की मृत्यु के बाद राज्य संचालन की घटना इस कथानायिका के सौंदर्य के साथ ही बुद्धिमान एवं कुशल संचालक की योग्यता की ओर भी संकेत करते हैं। भारतीय साहित्य में स्त्री द्वारा राजशासन की अनेक कहानियाँ वर्णित हैं। मत्स्येन्द्रनाथ के प्रसंग में त्रियादेश की रानी की चर्चा के साथ, सौ वर्ष पूर्व राजिया द्वारा पिता की उत्तराधिकारिणी बनकर शासन करना ऐतिहासिक रूप में स्त्री की महानतम उपलब्धि का सूचक है। मृगावती द्वारा राज्यशासन भी कुतुबन की स्त्री के प्रति अतिव्यापक दृष्टिकोण का सूचक है।

मृगावती यात्रा-सरायों का निर्माण राजकुँवर से मिलन और उसकी सूचना के उद्देश्य से निर्मित कराती है। मृगावती के दर्शनार्थ पुनः राजकुँवर का मूच्छित होना और साधक की सभी बाधाओं को पार कर लेने पर मृगावती और राजकुँवर का भौतिक से अभौतिक और लौकिक से अलौकिक मिलन होता है।

मृगावती और राजकुँवर दोनों का राज्य संचालन के पश्चात् पुनः राजकुँवर का दानव द्वारा अपहरण और फिर 'पवन' के माध्यम से मृगावती की खोज पूर्ण हुई। इस घटना के द्वारा कुतुबन ने मृगावती का वियोग वर्णन किया है जो परम्परा का आह्वाहन है -

"रोवत नैनन्ह दिस्टि खुटानी। कोरे राम 'मेरवई' सयिहिआनी।।
को नल 'आनइ' दयावति पासा। मरउ बिओग उरध हम सांस।।
को मेरवइ सारस संग जोरी। केइ सराप दै 'लिहा' अजोरी।।"[13]

पवन का संदेश

"तुम्ह बिनु 'जीउ जीवन' नहि लेखा। सेंदुर सेत मांग मैं देख।
काजर रात चंदन भव ताता। सबै अवस्था 'किहिसि ओहि गाता।।

अति 'बिओगी' व्याकुल बहु दू ुखी। भंवर 'बाजु' मालति बन सूखी।
'तोरि चाह ओहि कोउ' न कहई। उभि सांस लै मरि मरि रहई।[14]

तदनंतर दोनों का प्रेम-पूर्वक पुनः शैय्या मिलन। बाधा के बाद सुख की प्राप्ति, या यूँ कहे कि वियोग ने प्रेम को और अधिक मजबूत बना दिया है। यहाँ परमात्मा का अपने जीव से विरह भी उसके प्रेम को और अधिक पावन; पवित्र बना देता है। मृगावती अपनी जीवात्मा रूपी साधक से मिलकर परमात्मीय अनुकम्पा का भाव भी प्रदर्शित करती है।

सभी सूफी साधकों ने कथा में लोक और परलोक तथा नायिका में लौकिक और अलौकिक दोनों पक्षों को दिखाया है। कुतुबन ने राजकुँवर की पूर्व पत्नी 'रूपमणी' के प्रति मृगावती का 'असूया भाव' या 'सौतिया भाव' सहज मनोभाव के रूप में प्रदर्शित किया है। एक भारतीय नारी अपनी सभी वस्तुओं समझौता कर सकती है किन्तु पतिप्रेम से नहीं। कुतुबन ने यहाँ मृगावती से बड़ा व्यंग्यात्मक प्रतिउत्तर दिलाया है। रूपमिनी के प्रति -

दौत खन निसि रंग रस रहा। पीउ मकरंद पैम कर गह।
मधुकर केवहि कंवल बिसारा। मालती परिमल किए उथ हार।
भंवर 'पुरिख' आपन नहिं होइ। चाड परे बिनु मिलइन सोई।
रूपमिनि कै पूणी मन आसा। सौ-सौ दुख काढइ एक सांस।।''[15]

सपत्नी कलह खण्ड में यह भाव विवाद या कहें 'रार' का रूप ले लेता है जहाँ लोक का प्रभाव साफ झलकता है जिसमें मृगावती रूपमिनि को अपना कृपापात्र कहती है -

नीक किहिउ तौ ओखर पाई। लागिसि करइ सौति करदाई।।
तोहि छाड़िसि पूछिसि नहिं बाता। मोहि लगि ना जोजन सै साता।।[16]

किंतु समाज की मार्यादा का निर्वहन करना भी मृगावती बखूबी जानती है और सास के आ जाने पर लज्जावश शांत होकर सुलह कर लेती है। कुतुबन ने 'मृगावती को पूर्णतः संकेत गुत्थी बनकर नहीं बल्कि स्पष्ट रूप से प्रतिभासित होते हैं और लोक के भीतर से स्वतः बाहर आ जाते हैं। मृगावती का चरित्र जो उज्ज्वल सौंदर्य से युक्त होने के साथ, कंचनपुर में शासनभार का संचालन भी करती है। एक साहसी तथा बुद्धिमान स्त्री के साथ आदर्श पत्नी का भी निर्वहन करती है और अपने प्रतीकत्व में अंततः जीवात्मा में विलीन होती है। मृगावती रूपी परमात्मा अपने साधक जीव को सहर्ष मृत्यु द्वारा स्वीकार करती है-

''गा कहि हा कहि, कहि जिउ दिय
कलिजुग माह अइस किनी किय।
सर रचि बरहिं साइ लै अपने सो राका पखान
सती होइ सत 'ता' कर गनिअइ 'हा' कहि दे पराना।।''[17]

मृगावती जिस लोक की अप्सरा थी, वहीं अपने लोक में 'बका' के मुकामात को पूर्ण अवस्था तक पहुँचाती है और लौकिक और अलौकिक दोनों छोर अपने उद्देश्य को पूर्ण करते हुए समाप्त हो जाते हैं।

रूपमिनी

कथा की उपनायिका या यूँ कहें कि राजकुँवर की सहधर्मिणी पत्नी 'रूपमिनी' है।जिसका प्रेम एक पक्षीय होता है। सुबध्या के राजा ने अपनी कन्या के योग्य वर जानकर राजकुँवर का विवाह अपनी पुत्री रूपमिनी

से करा दिया। कुमार ने बाध्यतावश विवाह तो कर लिया किंतु वह रूपमिनी के राज्यक्षेत्र से निकल भागता है इसके पश्चात् रूपमिनी का वियोग वर्णन मार्मिक बन पड़ा है ।

कुमार के लिए यह विवाह एक बाधा और भाग जाना उससे मुक्तिमात्र है। किंतु रूपमिनी का एकमात्र आधार राजकुमार है जहाँ उसके वियोग में एक बनजारे से अपना विरह संदेश भेजती है -

"ऊँच उतंग भवन एक आहा। रूपमिनि तेहि चाढ़ि मारग चाहा।
अभी पंथ निहारति अही। मान अहा एक देखति रही।।"[18]

पथिक का संदेश वर्णन

"बिरह बियोग संताप बखानै। पान फूल किछु साध न मानै।।
दद उदेग उचार संताई। सेवइ झुखइ किछु न सुहाई।।
सीस रूख ओइ तेल बिसारा। निसि बासुर जोवइ तुम्ह बारा।
जो कोउ पंथी आउब बिदेसी आसलुबुध तेहि पूंछ।
मांसा मांस रकत नहि राती, पंजर रहेउ जो छूंछ।।"[19]

कथाबन्ध में रूपमिनी का प्रवेश प्रेमत्रिकोण की स्थापना करता है जहाँ रूपमिनी के प्रेम का एकमात्र आधार कुमार है। और मृगावती के प्रेममात्र का रूप भी कुमार है जो इस त्रिकोण को इस प्रकार दिखाते हैं-

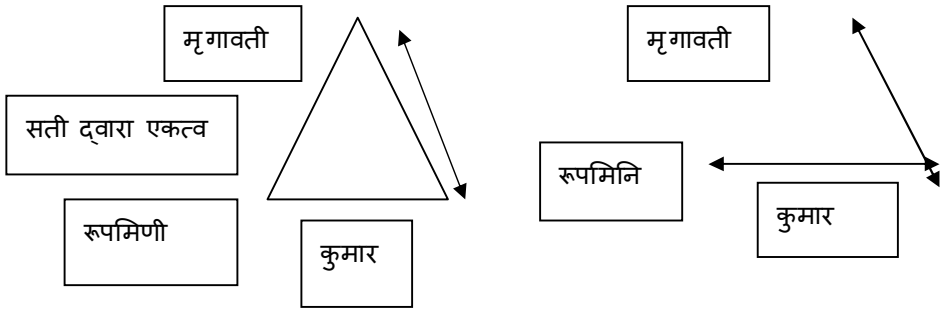

रूपमिनी का असूयाभाव भी तब अपने रूप में प्रकट होता है जब उसकी ननद अपने दोंनों भाभियों के बीच कहा-सुनी करा देती है और तब रूपमिनी कहती है -

"नारि छतीसी वह मैं देखी। त्रिया चरित्र न ओर बिसेखी।।
जाति नारि कै ओहि 'सेउ' लाजै। देस देस और खंड खंड बाजै।।
मोहि सरि होइ 'न पावइ' सरग चढ़ी 'धसि' लेइं।।"[20]

x x x

"कादौ कह जौ मेलिय ईटा। दोख न मोर जो भरिअइ छींटा।।
लाख टके कर मांडफ आही। काग बइठ तौ फोरिअइ ताही।
तैं जो ओखर मोहि कहं बोला। घाट भएउ नहिं ते हि सेउ मोल।।"[21]

और तब सास की भूमिका का महत्त्वपूर्ण रूप में प्रदर्शित है जो अपनी दोनों बहुओं के बीच सुलह कराती है जहाँ उसकी बहुएँ कुल की मार्यादा के प्रति लज्जाभाव का संकेत देती हुई अपनी मर्यादा की रक्षा करती हैं।

स्त्री-पात्रों के महत्त्वपूर्ण पारिवारिक चरित्रों के द्वारा कुतुबन ने लोक की मार्यादा की रक्षा का भार स्त्री को बताया जो दो कुलों की रक्षक होती हैं। राजा जनक भी सिया से कहते हैं -

"पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोउ।[22]

एक स्त्री; कुल, मर्यादा, लाज, संकोच, अस्तित्व, स्वाभिमान सबकुछ की धुरी होती है जिसके बलिदान को उसका कर्तव्य माना जाता है।

अंतिम परिणति में जीवात्मा रूपी राजकुमार की मृत्यु हो जाती है और फिर जीवन की निस्सारता का भाव प्रदर्शित करते हुए मृगावती और रूपमिनि अपने प्राण त्याग देती है और सती होकर कुल और पतिधर्म दोनों का पालन करते हुए परमात्मा जीवात्मा में विलीन हो जाती है -

"रूपमिनि फुनि वैसेहिं मरि गई।
कुलवंती (सत सेउं सती) भई।।"[23]

मध्यकाल की सामंती प्रथा में राजाओं की कई पत्नीयाँ होती थीं जहाँ पुरुष के पास चयन का, वरण का अधिकार था किंतु स्त्री एक पुरुष पर निर्भर रहकर परम्परा तथा आदर्शों की मर्यादा में बंधी होती है। इन कथानकों में उस बंधन से मुक्ति का मार्ग सती होने पर ही संभव दिखाया गया है।

रूपमिनी के पिता द्वारा कुमार से विवाह और कुमार का बाध्य होकर विवाह करना फिर भाग जाना आदि घटनाएँ स्त्री की उस दशा को प्रदर्शित करती है जहाँ स्त्री पहले पिता पर, फिर पति पर निर्भर होती है और एक पिता पर अपनी पुत्री का भार एक योग्य वर की खोज पर समाप्त होता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम के कण्व ऋषि भी शकुन्तला को विदा कर उस भाव का संकेत देते हैं जो पिता के ऊपर पुत्री का भार 'हृदय का प्रेमयुक्त भार होता है, इस प्रसंग में कण्व का गृहणी धर्म उपदेश भी बड़ा मार्मिक है जो स्त्री के मर्यादा रक्षक भाव का उद्घाटन करती है।

परमात्मा का जीवात्मा के साथ अलौकिक मिलन भौतिक शरीर छोड़ने के बाद होता है और यहाँ लौकिक प्रेम भी अलौकिक बन जाता है। रूपमिनी लौकिक पात्र होते हुए भी, कोई अप्सरा या दिव्य सुंदरी न होते हुए भी अपने प्रेम को चिता पर समर्पित कर अलौकिकता का परिचय देती है।

और अंत में गंगा तट पर चिता शय्या -

"गांग तीर लै कै सर रचा। (पूजी अवधि किही) हति बचा।।
राजा संग रानी चैरासी (ते सब गवनीं) वे 'रे' निरासी।।"[24]

राजकुँवर की 84 रानियाँ भी राजकुमार की चिता के साथ सती हुईं। यह मार्मिक दुखान्त प्रेम की अमरता का संकेत भी कर रहा है जहाँ लोक की सभी बाधाएँ - यथा शैतानरूपी निशाचर से भी मुक्ति प्राप्त होगी।

निष्कर्ष

सभी कवियों ने 'सती' परम्परा का बड़ा अद्भुत वर्णन किया है किंतु यह प्रथा आध्यात्म में तो फिट बैठती है किंतु वास्तव में बड़ी ही त्रासदपूर्ण प्रथा है। इस प्रथा और परम्परा के संदर्भ में अबुल फजल ने लिखा है - "भारत में एक प्राचीन प्रथा है कि अपने पति की मृत्यु के पश्चात् पत्नी पूरी बहादुरी और इस उम्मीद के साथ पति की चिता के साथ खुद को जला लेती है कि उसके पति को मोक्ष मिल जायेगा।

चाहे जीते जी उसके पति ने उसके साथ कैसा भी व्यवहार किया हो। यहाँ पुरुषों का चरित्र अजीब है कि वो अपने मोक्ष के लिए भी स्त्रियों का सहारा लेते थे।''[25]

यहाँ आध्यात्म के केंद्र में तो केवल मृगावती है जो अपने बिछड़े जीव से मिलन हेतु अपने लोक में पुनः जाती है जहाँ उसका जीव पहुँच उस लोक में पहुँच चुका है, किन्तु रुपमिनि का भी सतीत्व को वरण करना उस सती परम्परापालन की अगली कड़ी कि ओर इशारा करता हैं। दोनों नायिकाओं में लौकिकता-अलौकिकता का आध्यात्मिक अंतर भले हो किंतु लौकिक धरातल पर दोनों ही स्त्री-धर्म का निर्वाह करते हुए 'अमर प्रेम' का संदेश देती हुई स्त्री कि अलौकिक छवि निर्मित करती हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1 हिंदी साहित्य का इतिहास रामचंद्र शुक्ल पृ.62

2 पे्रमाख्यानक कथानकों का विश्लेषणात्मक अध्ययन डा॰. इन्दुबाली, पृ.156

3 मृगावती सं. माताप्रसाद गुप्त, प्रामाणिक प्रकाशन, आगरा, 1968 पृ.23, पद 30

4 वही, पृ.34, पद 43

5 द्विवेदी ग्रंथावली भाग-3, हजारी प्रसाद द्विवेदी, राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, 2007, पृ.403

6 मृगावती सं माताप्रसाद, पृ.58

7 मृगावती सं. माताप्रसाद, पृ.56,

8 मृगावती सं माताप्रसाद, पृ..56

9 मृगावती सं. माताप्रसाद, पृ.64, पद 83

10 मृगावती सं. माताप्रसाद, पृ.64, पद 83

11 इंदुबाली शोधप्रबन्ध हजारी प्रसाद द्विवेदी के निदेर्शन में पृ.758

12 वही, पृ.161

13 मृगावती सं. माताप्रसाद, पृ.237-238

14 वही, पृ.243

15 वही, पृ.326

16 मृगावती सं माताप्रसाद, पृ.344

17 मृगावती पृ.365, पद 422

18 मृगावती पृ270

19 मृगावती पृ 298

20 मृगावती ,पृ.341

21 मृगावती ,पृ.343

22 रामचरितमानस,तुलसीदास,गीताप्रेस गोरखपुर,सं. 2066, पृ.533

23 मृगावती पृ66

24 वही, पद 445

25 अबुल फजल - सेइग्स ऑफ़ हिज मैजेस्टी आइन-ए-अकबरी, सं. एच. ब्लाकमैन, कलकत्ता, 1866-77, पृ.243 कथा के मीरा विशेषांक से उद्धृत कथा16 अंक, मई 2012,संपा. अनुज